अध्याय - 5

समापन

अध्याय - 5

समापन

"नाटक" लिखित आलेख में निश्चय ही, साहित्यिक विधा के अंतर्गत गिना जा सकता है, किन्तु रूढ़ अर्थ में वह "पुनर्प्रस्तुतिमूलक" विधा है। नाटक की जड़ें मूलतः आदि मानवों के अनुष्ठानों में छिपी हुई हैं। मानवीय दस्तावेजों की शुरूआत से पूर्व मानव अनुष्ठान करता रहा था, जिसमें एक विकसित नाटक के लिए अपरिहार्य, अधिकतर तत्त्व शामिल थे···। इन्हीं अनुष्ठानों में नाटक के बीज थे।[1] सांस्कृतिक नाटकों की उत्पत्ति भी धार्मिक अनुष्ठानों में रेखांकित की जा सकती है। अनुष्ठानमूलक एवं पुनर्प्रस्तुतिमूलक होने के कारण नाटक अन्य साहित्यिक विधाओं से अलग हो जाता है, क्योंकि इसका हेतु पाठक न होकर दर्शक होता है जो नाट्यकला में बराबर की हिस्सेदारी निभाता है, और नाट्यानुभव का सहभागी बनता है, जिसे नाटक और रंगमंच ने प्रस्तुत किया हैं। प्रेक्षक से सीधा सामना होने के कारण नाटक की कई जटिलताएं बढ़ जाती हैं।

नाटक अन्य विधाओं की आपेक्षा इसलिए भी विशिष्ट है, क्योंकि इसका सर्जन संवादों के रूप में होता है। परिप्रेक्ष्य संवाद का निर्माण करते हैं वर्णनों का नहीं, जब कि अन्य विधाओं में ऐसा नहीं होता। संवादों का अस्तित्व भाषा से है। नाट्यभाषा अर्थ की दुहरी प्रक्रिया का निर्वाह करती है। एक तरफ नाटक शाब्दिक अर्थवत्ता के लिए पदबंध, वाक्यविन्यास और व्याकरणिक संरचनाओं पर आधारित है, तो दूसरी तरफ अभिनेयवृत्ति के कारण हरकत, वाणी, स्वरशैली, सम्बोधन पर।

नाटक भाषा में सर्जित होता हैं, किन्तु उसका समग्र प्रभाव और रसानुभव केवल भाषा पर निर्भर न होकर भाषेतर तत्वों पर भी निर्भर करता है। किसी भी नाटक की रचना प्रक्रिया में कृति के कथानक, चरित्र आदि तत्व ही परस्पर सूत्रबध्द नहीं होते वरन् क्रिया व्यापार स्थिति, विषयवस्तु सामाजिक परिवेश, विचार तत्व, सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि, रस और जीवन-दर्शन भी परस्पर गुंफित और एक दूसरे में समाहित हो जाते हैं। और जब नाटक का लिखित रूप अपने अंतर में उपरोक्त सभी विशेषतायें समाहित किये, अमूर्त को मूर्तरूप में प्रस्तुत करने में सक्षम होता है, तो उसकी सफलता का श्रेय उसकी सर्जनात्मक भाषा को जाता है, और वहीं जहाँ नाटकत्व का संघात कविता के साथ होता है, तो अलंकारिकता की संभावना अधिक बढ़ जाती है। अतः मैंने अपने इस लघु-शोध-प्रबंध हेतु दो ऐसे नाटकों को चुना है, जिनमें काव्य संघात से अद्‌भुत संरचनाओं का निर्माण हुआ है। एक "अंधायुग" जिसमें काव्यत्व की अधिकता के कारण जिसे काव्य नाटक की श्रेणी में रखा जा सकता हैं। दूसरा नाटक, काव्य का संघात लिये हुए भी नाटकत्व की प्रमुखता बनाये रखता है। इन्हीं के माध्यम से मैंने काव्य नाटकों के भाषा सौन्दर्य को ढूंढने का प्रयास किया है। अपने इस प्रयत्न में थोड़ा बहुत जो कुछ भी मैंने पाया उसका संक्षिप्त वर्णन कर रही हूँ।

प्रथम अध्याय में विषय की प्रस्तावना रखते हुए यह बताने का प्रयत्न किया गया है, कि क्या किसी भी, अवस्था के अनुकरण को नाटक कहा जा सकता है? अनुकरण केवल बाह्य या शारीरिक ही हो सकता है। अवस्था (स्थायीभाव) का अनुकरण असम्भव है। अतः नाटक मात्र अनुकरण नहीं वह स्थायीभावों का पुनः सर्जन है। नाटक में काव्य के सभी तत्वों और ललित कलाओं के प्रायः सभी प्रकारों का समन्वय है, इसलिए वह कला और काव्य की श्रेणी में सुंदरतम है। उसके प्रस्थापन में गीत की कर्णप्रियता, अभिनय में नृत्य की भाव व्यंजना दृश्य - नेपथ्य रचना में चित्र की नयनरंजनता, रंगमंडपविधान में शिल्प आदि का लालित्य है। नाटक की कला की परिणिति दर्शक को साधारण भूमि से उठाकर

उच्चतर स्तर पर प्रतिष्ठित कर देने में है। आचार्यों के इस कथन "काव्युषु नाटकं रम्यम्" से यही प्रतिध्वनित होता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो पता चलता है कि भाषा की उत्पत्ति के भी पहले संकेतों तथा मुद्राओं वाले अभिनय ने ही मानव को मानव बनाया है। कहीं यही तो नाटक की उत्पत्ति नहीं? प्रकृति हर प्राणी के लिए समान रही हैं। यदि अधिक श्रम के फलस्वरूप मानव अधिक विकसित हुआ तो इसकी पृष्ठभूमि में भी डारविन के श्रम मूल्य का संचित कोष आज विकसित मानव-सभ्यता के रूप में स्थित है। श्रम मूलतः अनुकरण मूलक ही रहा है। अतः समाज के मूल में अभिनय तत्त्व की उपस्थिति सहज सिध्द है। मानव का मानवत्त्व सामाजिकता के रूप में ही विकसित हुआ। उसकी अनुकरण वृत्ति सामाजिकता की सीमाओं में ही पनपी। अतः मनोविनोद एवं ज्ञानार्जन के साथ-साथ औचित्य, विवेक की संहितायें भी बनती चलीं, जो अनुकरण वृत्ति तथा विकास क्रम को भी बराबर प्रभावित करती रहीं। नाट्य, कला और साहित्य के जितने पुराने संदर्भ भारत में प्राप्त हैं, उतने अन्यत्र कहीं नहीं मिलते। फिर भी भारत में उपलब्ध लिपिबध्द साहित्य यह बताने में असमर्थ हैं कि नाट्यकला का आरम्भ सुदूर अतीत में कब, कैसे और किसके द्वारा हुआ। आज भी नाटक के आदिम रूप में प्राप्त कठपुतली और स्वांग की जो परम्परा हमारे देश में प्रचलित है, उसका उद्‌भव शिष्ट और परिष्कृत रंगमंच से बहुत पहले का है। इसके बावजूद इनकी कलात्मक अभिव्यक्ति एडिनबरा साइक्लिस की तुलना में कहीं व्यापक और सार्वजनिक इतिहास का संकेत करती है। अंत में, स्थूल रूप में नाटक सजीव जीवित जगत की प्रत्यक्ष चाक्षुष अनुभूति है। नाटक अपने विषय के आधार पर पेतिहासिक राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि माने जा सकते हैं। पेसे नाटक जिनमें काव्य और संगीत का प्रणयन होता है वे काव्य नाटकों के अंतर्गत आते हैं।

द्वितीय अध्याय में काव्य नाटक को पारिभाषित करते हुए यह बताया है, कि काव्य नाटक, सिर्फ काव्य या नाटक नहीं है, वे मानव मन की रागवृत्तियों

के भी उद्‌घाटक हैं। इसलिए नाटककार को मानव वृत्तियों का भी ज्ञान होना चाहिए। अधिकांश काव्य नाटक (जिनके लिए मैने बहुप्रचलित गीतिनाट्य शब्द प्रयुक्त किया है) स्वातंत्र्योत्तर काल में ही लिखे गये हैं। इन रचनाओं को तीन चरणों में विभक्त कर सकते हैं -

1: 1947 से 1955 तक प्रथम चरण।

2: 1955 से 1965 तक द्वितीय चरण।

3: 1965 से अब तक तृतीय चरण या अद्यतन चरण।

प्रथम चरण की रचनाओं का प्रधान विषय युध्द और तद्‌जनित परिणाम है। इनमें जीवन के प्रति अनास्था और कुंठाओं का वर्णन हुआ है। जिनमें से एक हमारा आलोच्य काव्य नाटक भी है, धर्मवीर भारती रचित "अंधायुग"। काव्य नाटकों का द्वितीय चरण गुणात्मक दृष्टि से प्रथम चरण की तरह ही है। इस काल के सभी नाटक जीवन के अत्यंत निकट है। हमारे द्वितीय आलोच्य नाटक के रचियता श्री·लक्ष्मीनारायण लाल रचित "सूखा सरोवर" सुंदर बन पड़ा है। काव्य नाटकों का अद्यतन काल शैली, शिल्प तथा कथानक की दृष्टि से नवीन प्रयोग लेकर आया है। काव्य नाटकों के स्वरूप तथा शिल्प दोनों में परम्परागत परिवर्तन हुए हैं। रामेश्वर सिंह कश्यप रचित समाधान काव्यत्व एवं नाट्यत्व दोनों दृष्टियों से सफल कृति है।

द्वितीय अध्याय में ही आलोच्य नाटकों की कथा वस्तु और प्रस्तुत विषय पर एक सरसरी नजर डाली गई है। अंधा कुआं श्री·लक्ष्मीनारायण लाल रचित एक ऐसी नाट्यकृति है, जो लोकनाट्य, परम्परा का निर्वाह करती है। "अंधा कुआं" नाटक की कथावस्तु एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसमें नारी पर अन्याय और अत्याचार के प्रहार निरंतर होते रहते हैं। नाटक की "सूका" अपने पति के अत्याचारों से तंग आकर इंदर नामक किसी व्यक्ति के साथ भाग जाती है। उसका पति मगौती पुलिस की सहायता से सूका को फिर घर लाकर

अत्याचार की सीमा को और बढ़ा देता है। सूका मगौती की मारपीट और अपने दिन के हिंसक बर्ताव से तंग आकर आत्महत्या कर लेना चाहती है। वह कुएं में छलांग लगाती है। लेकिन कुआं सूखा है। वह मरने से बच जाती है। एक बार फिर सूका का प्रेमी उसे दीवार फांदकर भगा ले जाने आता है, तो सूका उसे फटकार देती है।

"अंधा कुआं" से सूका को बचाकर नाटककार नारी के प्रति इस संवेदना को अभिव्यक्ति दे रहा है कि इस हृदयहीन समाज में यातना सहकर भी नारी को फिर उसी अन्यायी समाज की शरण लेनी पड़ती है। साथ ही भारत के गावों में नारी के प्रति पुरुष के पारम्परिक दृष्टिकोण को नकारकर नये जीवन मूल्य को स्वीकारने की प्रेरणा दी गई हैं।

"अंधायुग" श्री·धर्मवीर भारती रचित काव्य नाट्य है, जिसमें काव्यत्व और दृश्यत्व दोनों का सफलतापूर्वक प्रणयन हुआहै। महाभारत के युध्द में जो कुछ हुआ और उस समय के सत्ताधारियों ने जो कुछ किया उसके परिणाम दूसरे विश्वयुध्द के बाद की विभीषिकाओं से बहुत अधिक मेल खाते थे। इसी आलोक में भारती ने महसूस किया कि युध्द व्यक्ति और समाज की नैतिक मान्यताओं का उच्छेद कर डालता हैं,और उसके साथ उदित होता है, मर्यादाहीन युग। जिसमें कुंठा निराशा, विकृति, कुरूपता और अंधापन अपने पूर्ण अंगों के साथ अवतरित होता हैं। भारतीजी का प्रधान उद्देश्य इसी विकृति का चित्रण करना रहा है।

तृतीय अध्याय में आलोच्य कृतियों के भाषा सौन्दर्य का मूल्यांकन किया गया है। विभन्न सूक्ष्म और स्थूल दृष्टियों से देखने पर पता चलता है कि अंधा कुआं एक पूर्णांगी नाटक हैं। "अंधा कुआं" के साथ डा·लाल की पूर्णांगी नाटककर के रूप में यात्रा प्रारम्भ होती है। पहली नाट्य कृति होने के कारण इस नाटक की शैली और शिल्प में कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखाई पड़ती। फिर भी ग्रामीण जीवन की सामाजिकता का प्रतीक शैली में लिखे गये इस नाटक का आंचलिकता

एक महत्त्वपूर्ण गुण है। नाटककार ने आर्थिक संघर्ष के कारण उत्पन्न ग्रामीण जीवन की समस्याओं एवं सामाजिक कुरीतियों को पात्रों के द्वंद और मनोविज्ञान के साथ उभारा है। इसके लिए पात्रों के स्वाभावानुकूल भाषा का सशक्त योग किया है। लोक नाट्य परम्परा का निर्वाह करते हुए गीतों का समावेश किया गया है। लाल का यह सोरठा ही कथ्य का सारांश है, जो सम्पूर्ण वस्तु विधान की सीपी में मोती की तरह समाया हुआ है -

केहु न सुनी पुकार, हिरनी तब कुअंना गिरी
तुहिं राखौ यहि बार बिस गौसाई कुंअना।।

भाषा की सरलता स्वाभाविकता के कारण नाटक सहज सम्प्रेषणीय है। संपृक्त संवाद योजना, संक्षिप्त अर्थगर्भित संवाद और संवादों के नाटकीय सौन्दर्य के कारण नाटक सफल सिध्द होता है।

वहीं अंधायुग की भाषा भी प्रौढ है, वह पात्रों के व्यक्तित्व को अनुशासित करती है। सामर्थ्यवान भाषा नाटक की आधारभूमि है। मूलतः एक कवि की कृति होने के नाते भाषा में प्रस्तुत अलंकारों और बिम्बों में अधिक गहराई, एवं काव्यात्मकता भरी हुई है, जो यह सिध्द करती है, कि अंधायुग की भाषा काव्यात्मक है। अनुभवों के सूक्ष्म सहज और मर्मस्पर्शी ब्यौरों से युक्त बिम्बों के असंख्य उदाहरण अंधायुग में भरे पड़े है। वास्तव में क्रियाएं भावप्रधान होती हैं, अतः अनुभूति की तीव्रता और नाटकीय गत्यात्मकता को एकत्र साधनेवाले नाटककर कवि में अनुभावों या क्रियाओं की सूक्ष्म और गहरी पकड़ होती है।

चतुर्थ अध्याय "आलोच्य कृतियों" के रंगमंचीय बोध को लेकर लिखा गया है। "अंधाकुआं" और "अंधायुग" दोनों ही बहुप्रयुक्त नाटक है जिनकी रंगमंचीयता संदेह से परे है। "अंधाकुआं" में लोकनाट्य शिल्प का प्रयोग नाटक के लिए उपादेय है, क्योंकि लोकनाट्य परम्परा का सही प्रयोग किया गया है। लोक नाट्य परम्परा हमारी संस्कृति में अपनी बड़ी गहरी जड़े जमाये हुए है। हमारा जनमानस पूरी तरह उससे जुड़ा है। उन दोनों के बीच बड़ी गहरी आत्मीयता है। नाटक को

सूका, मगौती, इंदर हमारे बीच के जान पड़ते है। सूका का दुख हमारा जान पड़ता है। लोक नाट्य को आधार लेकर लिखे गये, इस नाटक का शिल्प बड़ा सशक्त है। खुले मंच पर संगीत के समीकरण के साथ बहुत सुंदर बन पड़ा है। इसमें टोटल थियेटर जैसी अनेक संभावनायें हैं।

अपरिमित, रंगमंचीय संभावनाओं का नाटक अंधायुग हिंदी रंगमंच ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य और रंगमंच की महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय उपलब्धि है। बिम्बों, प्रतीकों और विविध अर्थ छायाओं से युक्त सर्जनात्मक नाट्यभाषा परिस्थिति और मनःस्थिति के साथ साथ बदलती संवादों की लय और टोन तथा महाकाव्यात्मक लचीला काव्यरूपबंध इसे नाट्यशिल्प की दृष्टि एवं रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से उत्कृष्ट सिध्द करते हैं।

अंत में समापन के रूप में अध्ययन के परिणाम स्वरूप जिन तथ्यों को निष्कर्ष रूप में प्राप्त किया वे अधोलिखित हैं।

आदिम तथा मूल अनुभूतियों के साथ कल्पना और बुध्दि का संयोग होते ही अनुभूतियों का रूप जटिल और सूक्ष्म हो जाता है। इन्हीं जटिल और सूक्ष्म अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकात्मक बिम्बों का सहारा लिया जाता है। मनुष्य के अंतर्जगत का निर्माण बाह्यजगत के वस्तु व्यापारों के सम्पर्क से ही हुआ है। भय, विस्मय, प्रेम, घृणा आदि अनुभूतियों के आलम्बन बहिर्जगत के ही वस्तु व्यापार हैं। सूक्ष्म अनुभूतियाँ अपने गोचर आधारों के सहारे ही मूर्तरूप ग्रहण कर सकती हैं। रचनाकार स्मृति तथा कल्पना की सहायता से गोचर वस्तु व्यापारों के प्रस्तुतीकरण के माध्यम से उन वस्तु व्यापारो से उदित अनुभूतियों को मूर्तरूप प्रदान करते हैं। यह प्रस्तुतीकरण भाषा के माध्यम से ही होता हैं।

वस्तुतः काव्य भाषा अभिधा से आलंकारिता की ओर अग्रसर होती है और आलंकारिता (उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा) से प्रतीक की ओर अग्रसर होती है, जब कोई कवि जातीय मानस के अवचेतन में प्रतिष्ठित प्रसंग या पात्र का

प्रयोग करता है तो वह उसके सहारे केवल अपनी ही अनुभूतियों को मूर्त रूप ही नहीं देता वरन वह अपनी संवेदना के सांचे ढल कर उन आद्यबिम्बो (Archetypal Images) की सृष्टि करता है जो युगों तक जातीय जीवन के संस्कारों और अनुभवों के आधार रह चुकने के कारण, प्रतीकात्मक रूप ग्रहण कर लेते हैं, तथा जिनकी भाव सम्प्रेषणीयता अत्यंत गंभीर और दूरगामी होती है।

अतः स्पष्ट है, अभिधात्मक भाषा से आगे ही कल्पना की भाषा का क्षेत्र प्रारम्भ होता है और कल्पना की भाषा आलंकारिक और प्रतीकात्मक है। कल्पना का काम बिम्बों की सृष्टि करना हैं, जिसके लिए उसे अलंकारों और प्रतीकों का सहारा लेना होता है। जितना ही कवि अधिक संवेदनशील और अंतर्मुखी होता जाता है उसी अनुपात में उसके बिम्ब सूक्ष्म और प्रतीकात्मक होते जाते है। अंतर्मुखी कवियों के बिम्बों की भावात्मक सूक्ष्म रेखाएं प्रतीकों की सहायता से ही उभारी जा सकती है। प्रतीकात्मक बिम्बों का प्रयोग वे ही कवि कर सकते हैं जिनका मानस जटिल और गूढ़ अनुभूतियों के समुच्चय से निर्मित हो तथा जो प्रतिकूल परिस्थितियों के टकराव से उत्पन्न तनावपूर्ण और तीखी मनःस्थितियों तथा जीवन के अंतर्विरोधों से उगे चिंतन को संवेदनात्मक स्तर पर हृदयंगम करने और कराने की दिशा में अग्रसर हों।

प्रतीकात्मक बिम्ब योजना काव्यात्मक भाषा की चरम परिणिति है, यद्यपि यह भी ठीक हैं, कि इस प्रकार की बिम्बयोजना के भी अनेक स्तर हैं। जिन कवियों के अंतर्जगत में बुध्दि कल्पना और रागत्व का उच्चस्तर पर सामंजस्य होगा, वे ही इस प्रकार की बिम्ब योजना में सफल हो सकते हैं।

प्रबुध्द विचारक और संवेदनशील कवि होने के कारण भारती के बिम्ब तीखे और तराशे हुए हैं। उनकी भावुकता ने बिम्बों को तीखा बनाया हैं, तो बौध्दिकता ने उनको तराशकर शिल्पगत सौष्ठव प्रदान किया है। "अंधायुग" का

समूचा कथानक तीखे तराशे हुए बिम्बों की सुगठित श्रृंखला है। इन बिम्बों में ब्यौरे बहुत कम हैं, किन्तु थोड़े और भली प्रकार चुने हुए ब्यौरो की संश्लिष्ट योजना द्वारा तीखी अनुभूतियों को उभारने की चेष्टा की गयी है। नाटककार ने प्राचीन आख्यान के माध्यम से उदित बिम्बावलि को जनमानस में युग युग से प्रतिष्ठित रूपों, संस्कारों और संवेदनाओं से जोड़ दिया है। अंधायुग की सम्प्रेषणीयता और गम्भीर प्रभाववत्ता का रहस्य यही है कि सर्जनात्मक भाषा के माध्यम से आद्यबिम्बों की माला बड़े ही कौशल के साथ गूंथी गयी है। ऐसा इसलिए संभव है, क्योंकि कवि होने के नाते नाटककार की ऐन्द्रीय संवेदनशीलता बड़ी सजग है।